

संस्कृत नाट्य लेखन परंपरा में दशरूपक का महत्व

आशीष कुमार (शोधार्थी)

नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

जिस काव्य विधा में रूप अर्थात् रंगमंच पर प्रदर्शित किए जा सकने की योग्यता है, वह दशरूपक है।“

आचार्य राधाबल्लभ त्रिपाठी

शोध संक्षेप

साहित्य की सब विधाओं में से रूपक को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अपने अलंकार सूत्र में वामन ने लिखा है—सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेय। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने बीसवें अध्याय में दशरूपक विधान की विस्तार पूर्वक चर्चा की है। प्रत्येक नाट्य आलेख और प्रस्तुति में अपनी स्वरूप और शिल्प-परक विशेषताओं के कारण एक नाट्य दूसरे से भिन्न होता है। श्रव्य की अपेक्षा दृश्य का महत्व और प्रभाव अधिक होता है, भरतमुनि ने इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए अपने समय में प्रस्तुत किए जाने वाले नाट्य प्रयोग को दस रूपकों में विभाजित किया। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने बीसवें अध्याय में इन दशरूपकों की विस्तार पूर्वक चर्चा की है। ये रूपक हैं— नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, और ईहामृग। एक ग्यारहवें रूपक 'नाटिका' की चर्चा भी भरतमुनि ने इसी दशरूपक विधान के अन्तर्गत की है। परन्तु भरतमुनि ने उसे स्वतंत्र रूपक नहीं माना है, बल्कि उन्होंने नाटक और प्रकरण में अन्तर्भुक्त कर दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

हम सभी जानते हैं कि नाटक साहित्यिक अभिव्यक्ति कि ऐसी विधा है जो केवल साहित्य नहीं उससे अधिक कुछ और भी है, क्योंकि रचना लेखक द्वारा लिखे जाने पर समाप्त नहीं होती। उसका पूर्ण प्रस्फुटन और सम्प्रेषण रंगमंच पर जाकर ही होता है। रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण प्रतिष्ठा के बिना नाटक को संपूर्णता प्राप्त नहीं होती। और इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं भ्रामक हो जाता है। संसार के नाटक साहित्य के इतिहास में कहीं भी नाटक को रंगमंच से अलग करके केवल साहित्यिक रचना के रूप में नहीं देखा जाता और

रंगमंच एवं उसकी आवश्यकताओं के पारखी या जानकार ही नाटक के असली समालोचक हो सकते हैं, होते हैं और माने जाते हैं। किन्तु हमारे देश में स्थिति कुछ भिन्न है। संस्कृत नाटक के स्वर्ण युग के बाद हमारी रंग-परंपरा विच्छिन्न हो गई। उसके बाद प्रायः एक हजार वर्ष तक आधुनिक भाषाओं में नाटक बहुत ही कम लिखे गए और जो इक्का दुक्का प्रयत्न हुए भी वे संस्कृत नाटकों की अनुकृति मात्र थे और उनका किसी रंग प्रयोग से कोई संबंध नहीं था। जब विभिन्न परिस्थितियों में अठारहवीं- उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा तथा साहित्य से संपर्क के फलस्वरूप एक नए ढंग के रंग कर्म का उत्कर्ष हुआ तो देश कि बहुत सी भाषाओं में कुछ

कुछ नाटक लिखे जाने लगे। पर अपने देश की नाट्य परंपरा से जीवंत और गहरे संपर्क के अभाव में नाटक को या तो सृजनात्मक साहित्य से अलग मनोरंजन का कार्य समझा गया या फिर शैक्षिक क्षेत्रों में वह बहुत कुछ एक निरा साहित्य रूप गिना जाने लगा।

विशेषकर हिन्दी भाषा के क्षेत्र में इस आधुनिक रंग-कार्य की जड़ें भी बहुत ही दुर्बल और क्षीण रहीं, जिसके फलस्वरूप हिन्दी के साहित्यकारों द्वारा लिखा गया नाटक रंगमंच से कटा हुआ रहा और साहित्य के इतिहास में तथा विभिन्न आलोचकों द्वारा उस पर विचार रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि एक साहित्य विधा के रूप में ही होता रहा। इसलिए कोई विशेष आश्चर्य नहीं कि दो दशक पहले तक भी हिन्दी नाटककार का रंगमंच से संबंध बड़ा ही क्षीण था। हिन्दी के अधिकांश प्रतिभावान साहित्यकार नाटक की ओर उन्मुख ही नहीं होते थे और नाटकों के आलोचक तो प्रायः रंगमंच के साधारण ज्ञान से भी शून्य होते रहे थे।

नाटक

नाटक में प्रख्यात वस्तु एवं प्रख्यात एवं उदात्त राजर्षि को नायक बनाने का विधान है। इसमें नाना प्रकार की विभूतियों, समृद्धियों, विलासों, रसों, भावों एवं चेष्टाओं आदि का वर्णन रहता है तथा यह अंकों में विभाजित होता है। इसमें अंकों का विभाजन बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। एक अंक में एक ही प्रकार की घटनाओं का वर्णन होना चाहिए तथा अगले अंक की भिन्न घटनाओं से संबंध जोड़ने हेतु उसमें बिन्दु का प्रयोग भी होना चाहिए। अंक को नाट्यशास्त्र रूढ शब्द बताकर कहता है कि चूंकि यह विभिन्न भावों एवं रसों के द्वारा अर्थों को धारण करता है, इसलिए अंक कहलाता है। एक अंक के अंदर

नायक देवी तथा गुरुजन आदि चरित्रों के द्वारा उत्पन्न होने वाले अनेक रसों का चित्रण होना चाहिए। क्रोध, दुःख, शाप, युद्ध, विवाह तथा अद्भुत विषयों का अभिनय अंक के अंदर नहीं करना चाहिए। उल्लेखनीय है कि 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' में दुर्वासा का शाप अंक के अंदर न होकर विष्कंभक में ही आया है। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र कहता है कि नाटक के एक अंक में एक दिन से अधिक समय कि घटनाएं नहीं वर्णित होनी चाहिए। समय से अधिक अवधि कि घटनाएँ प्रवेशकों द्वारा सूचित की जानी चाहिए। इसी प्रकार जब कोई पात्र किसी लंबी यात्रा पर निकलता हो तो उसका वर्णन करके अंक को समाप्त कर देना चाहिए। प्रकरण तथा नाटक दोनों के ही अंकों के अंदर नायक कि उपस्थिति आवश्यक है। प्रवेशक में परिजनों की बातचीत वर्णित करनी चाहिए। यदि प्रयोग के बाहुल्य के कारण किसी अंक में अर्थ की समाप्ती संभव न हो तो उसे संक्षिप्त रूप में प्रवेशक के द्वारा सूचित करना चाहिए। नाटक के दो अंकों के मध्य अथवा दो अंकों के पूर्व प्रवेशक के भाति विष्कंभक का भी प्रयोग हो सकता है। इसमें मध्यम अथवा मध्यम तथा अधम पात्रों एवं संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रकरण

नाट्य शास्त्र में प्रकरण की कथा वस्तु तथा नायक दोनों ही उत्पाद्य अर्थात् कवि कल्पना प्रसूत कहे गए हैं। इसका इतिवृत्त भी नाटक की ही भाँती रसात्मक होना चाहिए। प्रकरण में किसी ब्राह्मण, वैश्य सचिव, पुरोहित, मंत्री अथवा सेनापति का चरित्र वर्णित होता है। इसका नायक उदात्त नहीं होता। इसमें न तो किसी दिव्य पात्र का चित्रण किया जाता है और न राज संभोगों का ही। इसके अंदर केवल बाह्य पात्रों का ही

चित्रण किया जाना चाहिए, जिनमें चेट, विट, श्रेष्ठी, वेश्या आदि हो सकते हैं। नाट्यशास्त्र कहता है कि यदि मंत्री, ब्राह्मण तथा पुरोहित की घरेलू बातों का चित्रण किया जा रहा हो तो वहाँ वेश्या की उपस्थिति नहीं चित्रित करनी चाहिए। साथ हीन वेश्या तथा कुलीन स्त्री इन दोनों का चित्रण एक ही स्थान पर नहीं होना चाहिए। नाटक की ही भाँति प्रकरण में भी कम से कम 5 तथा अधिक से अधिक 10 अंक होने चाहिए, जिसमें अनेक प्रकार के रसों तथा भावों आदि का चित्रण होना चाहिए।

नाटिका

नाट्यशास्त्र में प्रकरण तथा नाटक इन दोनों के योग से बनने वाले एक और भेद नाटिका अथवा नाती का भी वर्णन करता है जो दस रूपकों में नहीं गिनाया गया। इसकी कथा वस्तु तो प्रायः कल्पित होती है तथा नायक प्रख्यात राजा। नाटिका में स्त्री पत्रों का बाहुल्य होता है तथा अंक केवल चार होते हैं। यह ललित अभिनय से पूर्ण तथा सुगठित वस्तु वाली होती है। इसमें अनेक प्रकार के नृत्त, गीत, पाठ्य तथा संभोग आदि का चित्रण रहता है।

समवाकार

नाट्यशास्त्र के अनुसार समवाकार में देव-असुर संबंधी वस्तु तथा प्रख्यात एवं उदात्त नायक का चित्रण होना चाहिए। इसमें तीन अंक होना चाहिए तथा तीन प्रकार के कपटों, तीन प्रकार के विक्षेपों तथा तीन प्रकार के शृंगारों का वर्णन होना चाहिए। विविध शृंगार अथवा प्रेम का वर्णन करते हुए नाट्यशास्त्र कहता है कि कर्तव्य भौतिक लाभ तथा वासना से संबन्धित होने के कारण शृंगार भी तीन प्रकार का है। समवाकार के नायकों अथवा पात्रों की संख्या बारह तथा

अभिनय की अवधि अठारह नाडिका मानी गयी है।

ईहामृग

ईहामृग में केवल दिव्य-पुरुष पात्रों का ही विधान है। इसके अंदर दिव्य स्त्री के कारण युद्ध होने का चित्रण किया जाता है। नाट्यशास्त्र ईहामृग की वस्तु को सुगठित करने की बात तो करता है परंतु यह नहीं बताता की इसकी वस्तु प्रख्यात होगी या उत्पाद्य। ईहामृग के पुरुष पात्र प्रायः उद्यत होते हैं। इसमें स्त्रियों से संबन्धित संक्षोभ विद्रव तथा संघर्ष आदि का विवरण होता है। साथ ही इसमें चित्रित शृंगार स्त्रियों को फोड़ने, उन्हें भगाने तथा प्रतिस्पर्धा को दबाने आदि से संबन्धित होता है।

डिम

डिम की रचना प्रख्यात वस्तु तथा प्रख्यातोदात्त नायक के साथ करनी चाहिए। इसमें शृंगार तथा हास्य को छोड़कर शेष छह रसों का चित्रण होना चाहिए तथा केवल चार अंक रहने चाहिए। इसके अंदर भूचाल, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, उल्कापात, युद्ध, द्वंद, माया, इंद्रजाल तथा अनेक पुरुषों के साहसिक कार्यों का वर्णन होना चाहिए। इसमें कुल सोलह नायकों तथा सटवाती तथा आरभती वृत्तियों का चित्रण होना चाहिए।

व्यायोग

इसकी कथावस्तु एवं नायक प्रख्यात होने चाहिए इसमें स्त्री पात्र स्वल्प ही होते हैं तथा इसकी घटनाएँ केवल एक ही दिन की होनी चाहिए। समवाकार की भाँति पुरुष पात्र तो इसमें भी अधिक होते हैं पर यह ज्यादा लंबा नहीं होता। कारण इसमें केवल एक ही अंक होता है। इसका नायक दिव्य न होकर राजा ही होता है। इसके अंदर भी युद्ध, द्वंद्व, संघर्ष आदि का वर्णन होता है एवं दीप्त रसों का चित्रण किया जाता है।

अंक

इसकी वस्तु प्रायः प्रख्यात ही होनी चाहिए। कभी कभी उसमें उत्पाद्य वस्तु भी राखी जा सकती है। इसके पुरुष पात्र दिव्य न होकर अन्य होने चाहिए। इसमें करुण रस का चित्रण होना चाहिए। भीषण युद्ध की समाप्ती पर इसमें स्त्रियों के विलापों, निर्वेद वचनों तथा व्याकुल चेष्टाओं का वर्णन होना चाहिए।

प्रहसन

प्रहसन के दो भेद माने जाते हैं- शुद्ध तथा संकीर्ण। शुद्ध प्रहसन में पाखंडी, तापस, भिक्षु, श्रोत्रिय तथा अन्य नीच जनों के हास्यास्पद वचनों का वर्णन होता है। इसके अंदर उक्त पात्रों के अविकृत आचार एवं भाषा का चित्रण किया जाना चाहिए। संकीर्ण प्रहसन में वेश्या, विट, चेट, नपुंसक, धूर्त, चरित्रहीन स्त्री आदि के हास्यास्पद वचनों का वर्णन मिलता है। इसमें उक्त पात्रों की विकृत भाषा, अस्तव्यस्त वेशभूषा तथा विकृत आचार का चित्रण होना चाहिए।

भाण

भाण एक पात्र तथा एक ही अंक वाला रूपक है। इसका प्रयोक्ता पात्र या तो स्वयं अपने से संबन्धित कहानी बताता है अथवा किसी दूसरे से संबन्धित। इस प्रकार भाण के भी दो प्रकार कहे जा सकते हैं। इसका पात्र आकाशभाषित परोक्त वचनों को सुनने की-सी चेष्टा कर के उनका उत्तर प्रतुत्तर देते हुए आंगिक चेष्टाओं के साथ कथा क्रम को आगे बढ़ाता है।

वीथी

वीथी में भी केवल एक ही अंक तथा दो अथवा एक ही पात्र होते हैं। इसके पात्र उत्तम, मध्यम तथा अधम कोई भी हो सकते हैं। इसमें सभी रसों का चित्रण किया जाता है।

रूपकों का संस्कृत नाट्य लेखन में महत्व-

संस्कृत नाट्य परंपरा में रूपकारों भास, अश्वघोष, कालीदास, शूद्रक, विशाखदत्त, हर्ष, भट्टनरायण और भवभूति आदि की लंबी परंपरा रही है। भास से लेकर भवभूति तक लगभग इन सभी नाटककारों ने किसी न किसी रूप में चाहे वह कथ्य का वस्तु पक्ष हो चाहे पात्र योजना पक्ष, दस रूपक के विभिन्न विधानों और शिल्प का अपनी नाट्य रचनाओं में प्रयोग किया है। दस रूपकों को इनके प्रयोगों के आधार पर इसके महत्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। नाट्य लेखन में दस रूपक का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि ये नाट्य रचनाकार को नाट्य शिल्प की सूक्ष्म तकनिकियों से परिचित करवाता है कि कल्पित कथा को रंगमंच पर प्रयोग करने के लिए उस कथा में पात्रों का समायोजन किस स्थान पर करें। फिर उस कथा की आवश्यकतानुसार उसको कैसे व्यवस्थित करें जैसे रामायण में सीता हरण के बाद राम का जटायु से मिलना व संवाद के स्थान और युक्ति का संकेत भी देता है। यहाँ अगर नाटककार जटायु प्रसंग का विधान न करें तो उस कथा को आगे की गति नहीं मिलेगी साथ ही उसकी रोचकता पर भी फर्क आता है। यद्यपि इस उदाहरण की बाबत यह सवाल भी उठाया जा सकता है कि ये तो लोकप्रिय और सर्वविदित घटनाक्रम है इसमें रूपक का महत्व उसको संयोजित करने में किस प्रकार किया जा सकता है। यह उदाहरण सर्वविदित होने के कारण ही लिया गया है, फिर भी इसमें नाटक युक्तियों का प्रयोग, भाषा प्रयोग और रंगमंचीय दृष्टि से उनको रूपायित करने का शिल्प आदि तो निरूपित होता ही है।

दशरूपक का महत्व नाट्य लेखन में रूपक की विशेषताओं के आधार पर तथा संस्कृत नाट्य परंपरा में उसके प्रयोगों के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। दस रूपक के विशेष तत्वों में वस्तु नेता तथा रस आते हैं और लेखन में इन्हीं का महत्व सर्वोपरि है। विशेषतः कथ्य या वस्तु का जिसको प्रतिफलित करना ही रंगमंच का उद्देश्य होता है। मुख्य कथा को लोकवृत्त बनाने के लिए सामान्य जीवन में घटित होने वाली कुछ घटनाओं को किस तरह पताका, प्रकरी, कार्यावस्था मुख, विमुख आदि संधियों द्वारा प्रदत्त क्रम और शिल्प से मुख्य कथा के लक्ष्य में सहयोगी पात्रों का चित्रण और संवाद के माध्यम से कोई रचनाकार अधिक सरलता से ग्रहण कर प्रयोग कर सकता है। कथ्य के दस रूपक द्वारा निर्धारित प्रयोग से नाटक में एक व्ययस्था तो आती है साथ ही स्वभक्तता भी आ जाती है। अवस्थाओं में प्रत्याशा और नियतपति वस्तु या कथा में चर्मोत्कर्ष और कोलाहल का निर्माण करती है उदाहरण के लिए शकुंतलम में शकुंतला की अंगूठी खो जाने पर दुर्वासा के शाप के फलस्वरूप दुष्यंत का शकुंतला को न पहचानना, फिर शकुंतला के तिरस्कार से (प्रत्याशा प्रयोग से) नाटक में चरम की स्थिति बनती है तो नियताप्ती युद्धोपरांत लौटते हुए आश्रम में पुत्र भरत को देखना, सखियों की भरत से बातचीत के कारण मन में संदेह उत्पन्न होना आदि से नाटकीय कोलाहल की स्थिति पैदा होती है जो कि प्रदर्शन का आवश्यक तत्व है। रंगमंचीय साधनों की सीमित दृष्टि दशरूपकपाठ्य भेद भी रचनाकारों को देता है। इसमें तीन कोटियाँ हैं नियतश्राव्य (मंच के कुछ जनों के सुनने हेतु), अश्राव्य (किसी पात्र का स्वगत वचन) तथा सर्वश्राव्य (सबके सुनने हेतु) इन भेदों में

स्वगत जनान्तिक और अपवारित पात्र चरित्र चित्रण नाट्य अतिथि विवेचन में मुख्य रूप से अपनी भूमिका अदा करते हैं। जनान्तिक में दो पात्रों के वार्तालाप (जिन्हें कोई भी मंचस्थ व्यक्ति नहीं सुन सकता) से किसी तीसरे व्यक्ति के मनोभाव और चरित्र को संस्कृत रूपककारों ने खूब प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए शाकुंतलम में प्रियंवदा अनुसूया और शकुंतला के वार्तालाप को सुनकर दुष्यंत का कथन (स्वगत)- तो यह कन्व की बेटी शकुंतला, इसे इस तरह के कार्य में लगाकर महर्षि ने विवेक का परिचय नहीं दिया है। इस प्रकार दशरूपकों के इस विधान में वस्तु के विस्तारक अवस्थाओं संधियों का प्रयोग हुआ है वही संवादात्मक शिल्प भी रंगमंच को सम्पन्न करता है। भाण रूपक में तो आकाशभाषित वचन के विभिन्न प्रयोगों से दशरूप विधान द्वारा रचनाकार को संवाद लेखन तक की तकनीक का परिचय मिल जाता है। मंचन की दृष्टि से रूपकों में कुछ कार्यों का निषेध किया गया है जैसे युद्ध, मृत्यु, निद्रा, संभोग शाप आदि। इनके लिए सूच्या की व्यवस्था की गयी है। जैसे शाकुंतल नाटक में दुर्वासा का शाप सूच्य द्वारा बताया गया है। इसका उपयोग ये रहा है कि शाप के माध्यम से बरबस ही कहानी आगे बढ़ जाती है और नाटक का चरम भी प्रभावित नहीं होता। यदि शाप को मंचित किया जाता तो नाटक चरम स्वतः ही कम प्रभावी हो जाता। इस प्रकार रूपकों का कथानक विकास कुछ सिद्धांतों पर आधारित होता है जिसके प्रयोगों के कारण ही आज भी संस्कृत नाट्यलेखों को नाट्य रचना का स्वर्ण काल कहा जाता है। पात्र की व्यवस्था भी रूपकों के विभाजन का आधार है। मुख्य पात्र नायक-नायिका है जिनके भेदोपभेद भी किए गए हैं। संस्कृत काल में नाट्य कर्म प्रायः राज्याश्रित ही



हुआ करता था और अधिकतर नाट्य रचनाकार भी राजा के प्रश्रय में ही रचना कर्म किया करते थे। ऐसे में नाट्य का केंद्र बिन्दु राजव्यवस्था और परिवार होना स्वाभाविक ही था। इन सभी पात्रों के कार्य व्यवहार और निरूपण को नाट्यशास्त्र दशरूपक के माध्यम से निरूपित करता है। राजा के साथ कौन सा पात्र किस प्रकार की भूमिका में सहयोग करता है। राजभवन में अन्य कार्यों को किस प्रकार संचालित किया जाता है स्त्री, सेवक, दास, मंत्री आदि किस तरह का व्यवहार करें आदि सब जानकारियाँ भी नाट्यरचनाकारों को रूपक प्रदान करता है। संस्कृत रूपकों के पात्रों में मानव, देवता, अप्सरा आदि भी होते थे जैसा कि सामाजिकों का उनमें विश्वास होता था।

रूपकों का भेद रस प्रयोग के कारण भी है। संस्कृत नाटकों में शृंगार, रौद्र तथा वीर रसों की प्रमुखता मिलती है, अन्य सभी रस भी यथोचित मिलते हैं। रूपक में रसमय दृश्यों को प्रधानता दी गयी है इसलिए कुछ नीरस विषयों की प्रस्तुति विष्कंभक व प्रवेशक आदि के द्वारा देने का विधान है। रूपकों के साथ रस अनिवार्यता से जोड़ने का कारण तत्कालीन मनोरंजन की राजसी दृष्टि भी हो सकती है किन्तु ये रूपकारों के द्वारा अत्यधिक प्रयुक्त किए गए हैं क्योंकि ये रचनाएँ प्रमुख तौर से दरबारों के लिए ही की गयी है। दशरूपकद्वारा प्रदत्त रस संबंधी विवेचन नाटककारों के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा है, इसमें कोई शंका नहीं की जा सकती। संस्कृत नाट्य लेखन परंपरा में अंक एवं दृश्य योजना, पात्र एवं चरित्र योजना सूच्या आदि का मिलना इस बात का प्रमाण है कि अधिकांश रचनाकारों ने दशरूपक के अनुरूप ही रचनाएँ की हैं। प्रदर्शन के बीच में पात्रों का निर्गम प्रवेश, स्वगत भाषण,

जनांतिक भाषण आदि का मिलना इस बात का संकेत है कि दशरूपक नाट्य मंचन की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी साबित हुआ।

संदर्भ-ग्रंथ

- 1 अंकुर देवेन्द्र, *दर्शन-प्रदर्शन*, राजकमल प्रकाशन, पटना 2009
- 2 जैन नेमिचन्द्र, *रंगदर्शन*, राधाकृष्ण, दिल्ली 1982.
- 3 घोष, *नाट्यशास्त्र का अँग्रेजी अनुवाद*
- 4 दास श्याम सुंदर, *रूपक रहस्य*, तक्षशीला प्रकाशन
- 5 कालिदास अनु., मोहन राकेश, *शाकुन्तलम (नाटक)*, एनडीएस प्रकाशन, नई दिल्ली
- 6 गंगासागर राय, *संस्कृत के प्रमुख नाटककार और उनकी कृतियाँ*, चौखम्भा प्रकाशन